Sudarshan Research Journal, 2025;3(5): Page No: 30-32

SUDARSHAN RESEARCH JOURNAL

ISSN: 2583-8792 (Online)

Journal home page: https://sudarshanresearchjournal.com/

Review Article

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.16790565

भारतीय सिनेमा में महिलाओं की स्टीरियोटाइपिंग: एक आलोचनात्मक विश्लेषण

अनिल कुमार यादव, प्रो. बिन्दु शर्मा *

ARTICLE INFO

Article history:
Received: 26/04/2025
Revised: 11/05/2025
Accepted: 18/06/2025
Published: 20/06/2025

मुख्य शब्द:
बॉलीवुड सिनेमा, स्टीरियोटाइप, पितृसत्ता, नारीवादी दृष्टिकोण, आत्मनिर्भरता, रूढ़िवादिता, महिला सशक्तिकरण।

शोध सारांश

यह लेख भारतीय हिंदी सिनेमा में महिलाओं के रूढ़िबद्ध चित्रण (स्टीरियोटाइपिंग) का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। सिनेमा को जहाँ एक ओर मनोरंजन का साधन माना जाता है, वहीं यह समाज में व्याप्त लैंगिक दृष्टिकोण, सांस्कृतिक मूल्यों और पितृसत्तात्मक सोच को भी गहराई से प्रभावित करता है। हिंदी सिनेमा में महिला पात्रों को अक्सर पारंपरिक भूमिकाओं में सीमित कर दिया गया है, जहाँ वे या तो 'आदर्श पत्नी' के रूप में पूजनीय होती हैं, या 'आधुनिक' होकर खलनायिका के रूप में चित्रित की जाती हैं। इस प्रकार की छवियाँ समाज में स्त्री की स्वतंत्रता, निर्णय-क्षमता और जटिलताओं को दरकिनार कर देती हैं। प्रारंभिक फ़िल्मों से लेकर वर्तमान मुख्यधारा की फ़िल्मों तक, महिलाओं को प्रायः नायक की पूरक, सजीव सौंदर्य प्रतीक, या त्यागमयी पत्नी के रूप में दिखाया गया है। फिल्मों में उनका अस्तित्व पुरुष पात्रों के इर्द-गिर्द परिभाषित होता है। हालांकि, कुछ समकालीन फिल्में जैसे 'अस्तित्व', 'चक दे इंडिया', 'नो वन किल्ड जेसिका' आदि, इस प्रवृत्ति से बाहर निकलकर महिलाओं को स्वतंत्र और जुझारू रूपों में प्रस्तुत करती हैं। इस लेख में यह भी दर्शाया गया है कि कैसे यथार्थवादी सिनेमा—विशेष रूप से मधुर भंडारकर की फिल्मों के माध्यम से महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक और मानसिक जटिलताओं को उजागर करता है, फिर भी वे पूर्णतः पितृसत्तात्मक ढांचे से बाहर नहीं निकल पातीं। अंततः यह निष्कर्ष निकालता है कि भारतीय सिनेमा में महिलाओं के बहुआयामी और यथार्थपूर्ण चित्रण की आवश्यकता है, जो उन्हें केवल 'नज़र' का विषय नहीं, बल्कि 'नज़रिया' की वाहक बनाए। सिनेमा को केवल मनोरंजन तक सीमित न रखकर, सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बनाना आज की आवश्यकता है।

प्रस्तावना

भारतीय सिनेमा, विशेष रूप से बॉलीवुड, स्वतंत्रता के बाद से लगातार बदलाव के दौर से गुजर रहा है। पौराणिक कथाओं से लेकर हॉलीवुड फिल्मों की नकल तक, इसने कई रूप लिए हैं। महिलाओं की भूमिका भी इस दौरान बदली है, लेकिन यह बदलाव हमेशा समान रूप से स्वतंत्र या प्रगतिशील नहीं रहा। हालाँकि महिलाएं कई फिल्मों में केंद्रीय भूमिका में रही हैं, परंतु उनका चित्रण अक्सर सीमित और पुरुष-प्रधान दृष्टिकोण से हुआ है। नारीवादी आलोचना इस बात पर प्रकाश डालती है कि किस प्रकार महिलाएं फिल्मों में या तो त्याग की मूर्ति के रूप में प्रस्तुत की गई हैं या फिर उन्हें केवल सजावटी वस्तु के रूप में चित्रित किया गया है। सिनेमा न केवल मनोरंजन का सशक्त माध्यम है, बल्कि यह समाज की सोच, मूल्यों और सांस्कृतिक संरचनाओं को आकार देने वाला एक प्रभावी उपकरण भी है। भारत जैसे विविधता-भरे देश में, जहाँ सिनेमा जनसंचार का सबसे लोकप्रिय

Author Address: शोधार्थी, जनसंचार एवं मीडिया प्रौद्योगिकी संस्थान, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

***Corresponding Author:** प्रो. बिन्दु शर्मा

Address: निर्देशिका, जनसंचार एवं मीडिया प्रौद्योगिकी संस्थान, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

Relevant conflicts of interest/financial disclosures: The authors declare that the research was conducted in the absence of any commercial or financial relationships that could be construed as a potential conflict of interest.

© 2025, Yamuna Devi, this is an open access journal, and articles are distributed under the terms of the Creative Commons Attribution-NonCommercial-ShareAlike 4.0 License, which allows others to remix, tweak, and build upon the work non-commercially, as long as appropriate credit is given and the new creations are licensed under the identical terms.

साधन है, वहाँ फ़िल्मों का समाज पर प्रभाव अत्यंत व्यापक होता है। विशेषकर महिलाओं के चित्रण को लेकर हिंदी सिनेमा की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है, क्योंकि यह चित्रण समाज में स्त्री की भूमिका, उसकी गरिमा, अधिकार और स्वतंत्रता की समझ को प्रभावित करता है। भारतीय सिनेमा की शुरुआत से ही महिलाओं की छवि को एक विशेष ढांचे में प्रस्तुत किया जाता रहा है या तो वे देवी तुल्य आदर्श नारी होती हैं अथवा "विलेननाइज़्ड" यानी खलनायिका। यह द्वैत छवि उन्हें मानवीय जटिलताओं और विविधताओं से वंचित कर देती है। हिंदी फ़िल्मों में स्त्रियों को प्रायः पितृसत्तात्मक मान्यताओं के तहत 'पतिव्रता', 'बलिदानी', या 'संस्कारशील' रूप में दर्शाया गया है, जो पुरुष नायक के इर्द-गिर्द ही अपनी पहचान पाती हैं। हालाँकि समय के साथ महिलाओं की भूमिका में बदलाव दिखाई देता है, फिर भी अधिकांश मुख्यधारा फ़िल्में अब भी महिलाओं को एक सजावटी वस्तु, सहायक पात्र या 'आइटम नंबर' तक सीमित रखती हैं। यह स्थिति महिला सशक्तिकरण के दावों के उलट है और गहराई से विश्लेषण की माँग करती है। यह लेख हिंदी सिनेमा में महिलाओं की स्टीरियोटाइपिंग (रूढ़िबद्ध चित्रण) का आलोचनात्मक विश्लेषण करता है। यह मुख्यधारा फ़िल्मों में महिला पात्रों की प्रस्तुति, उनके सीमित चरित्र चित्रण, और फेमिनिस्ट फ़िल्म आलोचना के परिप्रेक्ष्य में सिनेमा के सामाजिक प्रभाव की पड़ताल करता है। साथ ही यह शोध, समकालीन यथार्थवादी सिनेमा में महिलाओं की उभरती छवि को भी रेखांकित करता है।

नारीवादी दृष्टिकोण

नारीवादी फिल्म समालोचना इस बात की पड़ताल करती है कि महिलाएं पर्दे पर किस प्रकार चित्रित होती हैं, उनके मुद्दों को किस प्रकार से पेश किया जाता है, और महिला फिल्मकार एवं लेखिकाएं इन विषयों से कैसे निपटती हैं। इसने यह भी उजागर किया है कि सिनेमा में महिला पात्रों को किस प्रकार वस्तुवत किया जाता है और कैसे उन्हें प्रायः चुप और निष्क्रिय रखा जाता है।

महिलाओं का रूढ़िबद्ध चित्रण

हिंदी फिल्मों में महिलाओं को दो स्पष्ट छवियों में प्रस्तुत किया गया है: या तो वे देवी-स्वरूप होती हैं । त्यागमयी, पतिव्रता, घरेलू और मर्यादित या फिर 'वैम्प' जो स्वतंत्र विचारों वाली, आत्मकेंद्रित और 'खलनायिका' होती है। इस प्रकार की द्वैतात्मकता फिल्मों में महिला की वास्तविक पहचान को छिपा देती है। उदाहरण के लिए, 'दहेज' (1950), 'गौरी' (1968), 'देवी' (1970), 'पति परमेश्वर' (1988) जैसी फिल्मों में महिलाएं आज्ञाकारी, त्यागमयी और अपने परिवार के लिए कष्ट सहने वाली दिखती हैं।

शोध पद्धति

शोध पत्र को लिखने के लिए ऐतिहासिक विधि और समीक्षात्मक अध्ययन विधि का प्रयोग किया गया है । ऐतिहासिक विधि के माध्यम से दीनदयाल उपाध्याय जी ने जो विचार पंचायती राज तथा जनजातियों के लिए दिए थे, उनका अध्ययन किया गया है । और समीक्षात्मक विधि का प्रयोग पंचायती राज और जनजातियों पर उनके विचारों का विकसित भारत में सामंजस्य स्थापित करने के लिए उपयोग की गई है । समीक्षात्मक विधि से ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का विश्लेषण कर के उन विचारों की समीक्षा की गई है।

कार्यस्थल से अनुपस्थिति और केवल पारिवारिक भूमिका में सीमितता

90 के दशक की पारिवारिक फिल्मों ने महिलाओं को परिवार की सीमाओं में ही सीमित रखा। आधुनिक, आत्मनिर्भर महिलाओं को भी घरेलू रूप में ही दिखाया गया। 'दिलवाले दुल्हनिया ले जायेंगे', 'परदेस', 'विवाह' जैसी फिल्मों में महिलाओं को भारतीय संस्कृति की सच्ची वाहक बताया गया और पश्चिमी महिलाओं को नैतिक रूप से कमजोर दिखाया गया।

आधुनिकता और संघर्ष का चित्रण

हाल की कुछ फिल्मों जैसे 'नो वन किल्ड जेसिका', 'चमेली', 'अस्तित्व', 'चॉक दे इंडिया' आदि ने रूढ़ियों को तोड़ते हुए महिलाओं के आत्मविश्वासी और स्वतंत्र चरित्र प्रस्तुत किए हैं। 'अस्तित्व' में एक पत्नी के आत्मबोध और समाज के पाखंड पर गहन प्रश्न उठाए गए हैं।

मधुर भंडारकर की यथार्थवादी फिल्में

मधुर भंडारकर की फिल्में जैसे 'पेज 3', 'चांदनी बार', 'कॉर्पोरेट', 'हीरोइन' आदि ने महिला पात्रों को प्रारंभ में सशक्त दिखाया, लेकिन अंततः वे सामाजिक ढांचे में समाहित हो जाती हैं। यह दर्शाता है कि यद्यपि फिल्में विद्रोह का प्रयास करती हैं, परंतु अंततः वे उसी समाजिक नियमों को पुनर्स्थापित कर देती हैं।

निष्कर्ष

भारतीय सिनेमा में महिलाओं का चित्रण एक समान नहीं रहा है क्योंकि महिलाएं स्वयं भी एक समान समूह नहीं हैं। उनकी जाति, धर्म, वर्ग, शिक्षा और इच्छाएं भिन्न-भिन्न होती हैं, इसलिए फिल्मों में उनका चित्रण भी संदर्भानुसार होना चाहिए। परंतु अधिकतर फिल्मों में महिलाएं या तो आदर्श हैं या खलनायिका। आज ज़रूरत है कि सिनेमा महिला पात्रों को सिर्फ मनोरंजन का साधन न बनाकर, उन्हें उनके अनुभवों, संघर्षों और स्वप्नों के साथ प्रस्तुत करे। हिंदी सिनेमा को चाहिए कि वह महिलाओं को एक स्वतंत्र इकाई के रूप में स्थान दे, ताकि वे समाज में अपनी पहचान स्वयं निर्मित कर सकें। सिनेमा का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना का निर्माण भी होना चाहिए।

सन्दर्भ सूची

1. अहमद, एस. अकबर (1992)। 'बॉम्बे फिल्म्स: भारतीय समाज और राजनीति का रूपक के रूप में सिनेमा', मॉडर्न एशियन स्टडीज़, खंड 26, अंक 2, पृ. 289–320। ग्रेट ब्रिटेन।
2. बुरा, ऋषभ (संपा.) (1981)। 'फिल्म इंडिया: लुकिंग बैक 1896–1960', निदेशालय फिल्म महोत्सव, नई दिल्ली।
3. मुलवे, लॉरा (1988)। 'दृश्य आनंद और कथात्मक सिनेमा', फेमिनिज़्म एंड फिल्म थ्योरी में (संपा. कॉन्सटेंस पेनली), न्यूयॉर्क: रूटलेज प्रकाशन।
4. मिश्रा, विजय (2006)। 'बॉलीवुड सिनेमा: एक आलोचनात्मक वंशवृत्ति', एशियन स्टडीज़ इंस्टिट्यूट, विक्टोरिया यूनिवर्सिटी ऑफ वेलिंगटन।
5. मोटवानी, मोनिका (1996)। 'हिंदी फिल्म नायिका का बदलता स्वरूप', जी मैगज़ीन ऑनलाइन।
6. सिंह, इन्दुबाला (2007)। 'भारतीय सिनेमा में लैंगिक संबंध और सांस्कृतिक विचारधारा: साहित्यिक कृतियों के चयनित रूपांतरणों का अध्ययन', दीप एंड दीप प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. जोसेफ, ए., एवं शर्मा, किरण (1994)। 'किसका समाचार? मीडिया और महिलाओं के मुद्दे', पृ. 21, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
8. गोकुलसिंग, के.एम., एवं डिसानायके, डब्ल्यू. (1998)। 'भारतीय लोकप्रिय सिनेमा: सांस्कृतिक परिवर्तन की एक कथा', ट्रेंटहम बुक्स लिमिटेड, यूनाइटेड किंगडम।
9. जैन, ज्योत्स्ना एवं राय, सुप्रिया (2009)। 'फिल्म्स एंड फेमिनिज़्म: इंडियन सिनेमा पर निबंध', पृ. 10, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।
10. चटर्जी, शोमा (2003)। 'भारतीय सिनेमा में स्त्री का चित्रण', न्यू डेल्ही: पेंग्विन बुक्स इंडिया।
11. दत्त, मीना (2010)। 'नारी और सिनेमा: विमर्श और यथार्थ', नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
12. कपूर, रत्ना (2004)। 'फिल्मों में लैंगिक राजनीति: एक आलोचनात्मक विश्लेषण', इंडियन जर्नल ऑफ जेंडर स्टडीज़, खंड 11(2), पृष्ठ 145–162।
13. बैनर्जी, मीनाक्षी (2007)। 'बॉलीवुड और भारतीय स्त्री: परंपरा बनाम आधुनिकता', समाज और संस्कृति त्रैमासिक, पृ. 89–105।
14. कक्कड़, सुधीर (1989)। 'इंटिमेट रिलेशंस: एक्सप्लोरेशन इन इंडियन सेक्सुअलिटी', हार्पर कॉलिन्स, नई दिल्ली।
15. दासगुप्ता, छाया (2012)। 'भारतीय फिल्में और स्त्री अस्मिता', प्राची संवाद, खंड 8, अंक 1, पृष्ठ 33–45।

HOW TO CITE THIS ARTICLE: यादव,. अनिल. कुमार., & शर्मा,. प्रो. बिन्दु. (2025). भारतीय सिनेमा में महिलाओं की स्टीरियोटाइपिंग: एक आलोचनात्मक विश्लेषण. Sudarshan research journal, 3(5), 30–32. https://doi.org/10.5281/zenodo.16790565.